© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 01 | January – March 2018

भाषा में पद के महत्त्व पर विद्वानों के विचार

अंकुश, ankboorarajli@gmail.com, हिसार (हरियाणा)

भाषा विचार व्यक्त करने का सर्वोत्तम साधन है। भाषा के बिना जीवन बोझ के समान है। भाषा को सम्पूर्ण रूप तब प्रदान किया जा सकता है जब उसे पद, वाक्य आदि को जोड़ दिया जाता है। विद्वानों में इस बात को लेकर गंभीर रूप से चर्चाएँ होती हैं कि 'वाक्य' ज्यादा महत्त्वपूर्ण है या 'पद'। येस्पर्सन उक्ति की एक ही कोटि स्वीकार करते हैं। 'वाक्य'[1] भर्तृहरि ने भी यही बात स्पष्टता से कही है। उनकी दृष्टि में भी 'वाक्' की एक और अखण्डात्मक अभिव्यक्ति वाक्य से ही संभव होती है। पर हम देखते हैं कि व्याकरण शास्त्र में विचार 'पद' या शब्दरूपों का ही अधिक होता है। अतः स्वभावत्: शंका यह उठती है कि व्याकरण की दृष्टि से इकाई 'पद' है या 'वाक्य' ? भाषा तत्व की दृष्टि से यह ईकाई वाक्य ही ठहरती है। व्याकरण के संबंध में दो विरोधी स्थितियाँ सामने आती हैं। एक ओर, स्फोट–सिद्धान्त के समर्थक और विरोधी इस बात पर बल देते हैं कि व्याकरण वाक्य को अखण्ड इकाई मानता है। उनकी दृष्टि में 'स्फोट' का आधार वाक्य की एकता पर ही निर्भर रहता है। दूसरी ओर, पदवाद के समर्थकों का कहना है कि व्याकरण की समग्र सत्ता 'पदरचना' विषय को लेकर ही बढ़ी है। अतः उनकी दृष्टि में व्याकरण का आधार पद है, वाक्य नहीं।

प्रस्तुत शोध पत्र में हम[1] 'पद' क्या है।[2] पद के विषय में पाणिनी का मत[3] कात्यायन और पतंजलि के विचार[4] पद की स्वतंत्रता पर विचार करेंगे।

(1) **'पद' क्या है' :–** पाणिनी के सुबन्त और तिड्.न्त को पद कहा है।[3] गार्डिनर के शब्दों में शब्द की बाह्य–आकृति को 'पद' कहते हैं। येस्पर्सन की दृष्टि में पद किसी भी प्रयोगार्ह शब्द को कह सकते हैं, चाहे उसमें विभक्ति हो या न हो। अंग्रेजी शब्द 'पार्ट्स ऑफ् स्पीच' 'पद' के भाव का वाहक है। भर्तृहरि की दृष्टि में, पद वह अंश है जो किसी पूर्ण वक्तव्य में से पृथ्क करके, प्रयोगार्ह शब्द के रूप में, विचारार्थ लिया जाता है और जिसमें प्रकृति–प्रत्ययादि का विचार संभव होता है।[5] पतंजति, पाणिनी के चिन्तन पर बढ़ते हुए, 'पद' को केवल विशिष्ट रूप शब्द ही नहीं मानते बल्कि विशिष्ट स्थिति 'पद' के किसी अंश को भी 'पद' कहना ही उपयुक्त मानते हैं।[6] 'पद' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में भी मिलता है, परन्तु कदाचित् भिन्न अर्थ में। 'चत्वारि वाक्यरिमिता पदानि'[7] एवं 'चत्वारिश्रृंगा'[8] में दो सत्यों को कहा गया है। पहले मन्त्र 'चारपद' का स्पष्ट अर्थ परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रूप में वाणी के चार चरणों से ही है क्योंकि, उन्हीं में से तीन गुहा में स्थित और एक श्रव्य रूप में व्यक्त होते हैं। परन्तु, दूसरे मन्त्र में सात हाथ, तीन पैर आदि की कल्पना के साथ 'चारश्रृंग' वे चार पद ही है जिनकी व्याख्या यास्क, पंतजलि और नागेश ने 'नामाख्यार्तापसर्गनिपाताश्च' के रूप में की है। इसे ही दोहराते हुए भर्तृहरि इतना और जोड़ देते हैं : 'कर्मप्रवचनीयास्तुनिपातेष्वर्न्भूता इति चत्वार्युच्यन्ते'।[9]

(2) **पाणिनी का मत :–** पद के महत्त्व को जानने के लिए हमारी दृष्टि सर्वप्रथम पाणिनी की ओर जाती है। पाणिनी मे तीन सूत्र इस प्रकार हैं :–

(क) समर्थः पदविधिः (पा. 2.1.1)

(ख) परः सनिकर्षः संहिता (1.4.109)

(ग) वचोऽशब्द संज्ञामाम् (पा. 7.3.67)

(क) समर्थः पदविधि :– इस सूत्र को लेकर काफी वाद विवाद चला है। खींचतान कर इसके दो अर्थ किये जाते हैं (अ) पद की विधि एकार्थता पर निर्भर करती है और (ब) पदसंबंधी विधि या पद–प्रयोग किसी ऐकार्थ्य या सार्म्थ्य की उपस्थिति में ही संभव हो जाती है। इनमें से पहला अर्थ 'पद' की एकार्थता की सूचना देता है और उसका मुख्य लक्ष्य 'समास' को 'एकपद' सिद्ध करना है। दूसरा अर्थ 'वाक्य' की एकता को स्वीकार करके बढ़ता है। उस दृष्टि से 'पद विधि' वाक्यार्थ की एकता को विभाजित करके स्पष्टीकरण करने का प्रयास–मात्र ही ठहरती है। कात्यायन और पतंजलि ने इन दोनों संभावनाओं पर अधिक विचार किया है।

(ख) परः सनिकर्षः संहिता :– यह सूत्र भी पाणिनी की भावना को पूरी तरह स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। वेदों में संहिता का अर्थ एक वाक्य लिया जाता है। वाक्य की परिभाषा करने वाले उसमें आसन्ति का जो प्रतिबंध लगाते हैं, वह इसी सूत्र की प्रेरणा से। पर इस सूत्र के व्याख्याकार पाणिनी की भावना को यहाँ पद–संबंधी कह देते हैं। संहिता का परम संनिकर्ष क्या है ? इसे हम किसी पूर्वापर प्रकरण से भी नहीं समझ सकते। विराम की परिभाषा इसके बाद दी गई है[10] और वहीं अध्याय की समाप्ति हो जाती है। स्पष्ट है कि 'एकता' की परिभाषा अपूर्ण रहती, यदि पाणिनी उसकी एक सीमा न बांध देते।

(ग) वचोऽशब्द संज्ञामाम् :– इस सूत्र में पाणिनी अधिक स्पष्ट हो पाये हैं। यदि 'शब्दसंज्ञा' या उच्चरित शब्दों की संज्ञा का प्रश्न है तब तो वाच्य शब्द प्रयुक्त होगा। अन्यथा, केवल 'परिभाषा का भाव' कहने के अर्थ में वाच्य शब्द ही प्रयुक्त होगा। 'वाक्य' और 'वाच्य' का मूल पाणिनी ने वच् को स्वीकार किया है, 'वाच' या वाक् को नहीं। 'वच' का अर्थ है 'परिभाषा'।[11] परिभाषा के भाव का नाम ही वाक्य है। अतः 'शब्द संज्ञा' का अर्थ किसी पद या शब्द की संज्ञा से न होकर, कही गई शब्द राशि की संज्ञा से अथवा वाच्य अर्थ की संज्ञा से है।

(3) कात्यायन और पतंजलि :– 'समर्थः पदविधिः'[12] का अर्थ सामान्यतः समास–प्रक्रिया से संबद्ध कर दिया जाता है। समास को एक पद मानते हुए, उसमें अर्थ की एकता को सिद्ध करने के लिए 'समर्थ' शब्द का प्रयोग उचित माना जा सकता है। किन्तु पतंजलि वाक्य और समास का अन्तर स्पष्ट करते हैं। 'वाक्य' भी एकार्थक होता है और 'समास' भी। किन्तुः प्रत्येक वाक्य समास में नहीं पलटा जा सकता और प्रत्येक समास वाक्य का समानार्थक नहीं होता। कारण है अगमकत्व या दुर्बोधता।[13] वाक्य–योजना का मुख्य लक्ष्य, संक्षेप न होकर, पूर्ण अर्थाभिव्यक्ति है। यदि अर्थ ही स्पष्ट न हुआ, तब उसे 'समर्थ' कैसे कहेंगे : यत्र गमकोहेतुर्भवति, भवति तत्र वृत्तिः। यद्यगमकत्वं हेतुनार्थः समर्थग्रहणेना।[14] कात्यायन 'समर्थ' की परिभाषा करते हुए कहते हैं, पृथक् प्रतीत होने वाले अर्थों का एकार्थीभिधायी या एकार्थवाचक बन जाना ही 'समर्थ' बनना कहलाता है : प्रथगर्थानामेकार्थी भावः समर्थवचनम्।[15] इसकी व्याख्या में पतंजलि अधिक स्पष्टता से कहते हैं कि पृथक् अर्थ का अभिप्राय 'पद' से है।

पद् पृथक्–पृथक् अर्थ का वहन करते दिखते हैं। किन्तु वाक्य में प्रयोग होने पर उनकी प्रथगर्थता समाप्त हो जाती है। जहाँ पद अलग–अलग हों और उनका अर्थ अलग–अलग प्रतीत हो, वहीं उनसे किसी ऐसी स्थिति का सामने आना संभव है, जिसमें पदों का अपना अर्थ मिट जाए। अपनेपन का यह मिट जाना ही 'एकार्थीभाव' का मूल है। अतः वाक्य उस स्थिति का नाम है, जहाँ आकर पद अपनी पृथक् स्थिति खो देते हैं।

(4) पद की स्वतंत्रता :– वक्ता और श्रोता के बीच 'नाद' और 'स्फोट' का संबंध तय हो जाने के बाद यह प्रश्न उठता है कि वक्ता पदों का स्वतंत्र प्रयोग करता है या उनका प्रयोग वह किसी एक विशिष्ट अर्थ–भावना को व्यक्त करने के लिए करता है। यदि उद्देश्य अर्थभिव्यक्ति और अर्थभावना है, तब निश्चय ही 'पद' या 'पदसमूह' अथवा एक ध्वनिमात्रा के प्रयोग से अन्तर नहीं पड़ता। उद्देश्य तो है वक्ता के बुद्धयर्थ की श्रोता के बुद्धयर्थ में परिणति।[16] यदि यह उद्देश्य पूरा हो गया, तब एक ध्वनि या वर्ण भी 'वाक्य' बन जाता है।[17] और यदि यह उद्देश्य पूरा नहीं हो पाया, तब अनेक पदों, अथवा तथाकथित वाक्यों का प्रयोग भी वाक्य संज्ञा के अंर्तगत नहीं आ सकता है।[18] वाच्य अर्थ को वहन करने वाला शब्द शरीर ही वाक्य हैः वाक्य संज्ञा है और वाच्य संज्ञी।

निष्कर्ष

अतः इन सब विद्वानों के विचारों से ज्ञात होता है कि पद भाषा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पद चाहे भाषा की स्वतंत्र इकाई हो या ना हो लेकिन पद का अपना विशेष स्थान है।

सन्दर्भ :–

1. अध्याय 3, अनुच्छेद 3.28.2 पृ. 85
2. विस्तृत विवेचन के लिए देखें – भाषा और वाक्य का चतुर्थ अध्याय, अनुच्छेद 85–6, पृ. 82–3
3. पाणिनि 1.4.14
4. गार्डिनर, स्पीच एण्ड लैंग्वेज, पृ. 131, अनुच्छेद 41
5. वा. 2.13ः 3.1.1
6. पाणिनि 1.4.14–17 का भाष्य
7. ऋग्वेद 1.164.45
8. ऋग्वेद 4.58.6
9. म. त्रि. 1.1.1
10. विरोमाऽवसानम्। पा. 1.4.110
11. वच परिभाषणे
12. पाणिनि 2.1.1
13. म. 2.1.1 पा. 1 – 'अगमकत्वात' वा.
14. वही
15. म. 1.1.1 पा. वाण.
16. वा. 3.3.33
17. वा. 2.40
18. वा. 2.9, 457